bdkbZ 19 J0;-n`'; ek/;eksa ds fy, ys[ku

bdkbZ dh :ijs[kk

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 श्रव्य-दृश्य माध्यम से तात्पर्य

19.3 श्रव्य-दृश्य माध्यमों का स्वरूप और विशेषताएँ

- 19.3.1 चित्रों और बिंबों की भाषा
- 19.3.2 दृश्य और ध्वनि एक-दूसरे के पूरक

19.4 मंचीय प्रस्तुति और रेडियो/पर्दे पर प्रस्तुति के बीच अंतर

19.5 श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए कार्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया

19.6 इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की भाषिक विशिष्टता

19.7 लेखन के प्रकार

- 19.7.1 रेडियो स्क्रिप्ट
- 19.7.2 सिनेमा और टेलीविज़न की पटकथा
- 19.7.3 लेखन की विशिष्टताएँ
- 19.7.4 वृत्तचित्र
- 19.7.5 कमेंट्री/वॉयस ओवर यानी वृत्तचित्र की पटकथा
- 19.7.6 विज्ञापन

19.8 साहित्यिक और मीडिया लेखन के बीच अंतर

- 19.8.1 साहित्यिक लेखन और रेडियो के लिए लेखन
- 19.8.2 साहित्यिक लेखन और पटकथा लेखन

19.9 प्रोड्क्शन स्क्रिप्ट

19.10 सारांश

19.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

19-0 mÌs';

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि

- श्रव्य-दृश्य माध्यम क्या हैं;
- उनकी क्या विशेषताएँ हैं;
- मंच पर नाट्य प्रस्तुति से वे किस तरह भिन्न हैं;
- श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए लिखने के लिए क्या विशिष्ट अपेक्षाएँ हैं; और
- साहित्यिक लेखन और इन माध्यमों के लिए लेखन में क्या अंतर है।

19-1 izLrkouk

पिछली इकाई में आप हिंदी एकांकी और अन्य नाट्य विधाओं के स्वरूप और विकास की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। आप जान गए हैं कि साहित्यिक रचना पढ़ने/सुनने के लिए भी लिखी जाती है और देखने के लिए भी। इसीलिए प्राचीन काल में काव्य के दो प्रकार बताए गए थे – श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य वाचन/गायन के लिए होता था जिसका आस्वाद सुन कर लिया जा सकता था और दृश्य काव्य सजीव प्रस्तुति यानी मंचन के लिए और इसका आनंद देखकर लिया जाता था। प्रबंध काव्य, गीति काव्य आदि श्रव्य काव्य की श्रेणी में आते थे और नाटक दृश्य काव्य की श्रेणी में। आज के ज़माने में छपाई की सुविधा के चलते 'श्रव्य' विधाओं का स्थान 'पाठ्य' विधाओं ने ले लिया है। कविता, उपन्यास, कहानी, जीवनी, रेखाचित्र आदि साहित्यिक विधाएँ पढ़ने के लिए लिखी जाती हैं और नाटक देखने के लिए। यहीं पर ध्यान रखने की बात है कि संप्रेषण का श्रव्य रूप आज के ज़माने में खत्म नहीं हो गया बल्कि यह ज्यादा व्यापक और प्रभावशाली हो गया है क्योंकि इसमें टेक्नॉलोजी का प्रवेश हो गया है। प्रस्तुत इकाई में हम टेक्नोलॉजी से जुड़े लेखन के विषय में चर्चा करेंगे। दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप की जानकारी आप पिछली इकाई के 18-2 Hkkx में प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए लेखन से संबंधित है।

19-2 J0;-n'; ek/;e l rkRi;

आपके मन में प्रश्न होगा कि श्रव्य-दृश्य माध्यम हैं क्या? मौजूदा इकाई में आप जान सकेंगे कि श्रव्य-दृश्य माध्यम क्या होते हैं, उनके लिए लेखन की क्यों जरूरत पड़ती है, साहित्यिक रचनाओं से उनका क्या संबंध है। प्रस्तुत खंड की अगली इकाइयों में आप दो एकांकी नाटकों के अतिरिक्त नुक्कड़ नाटक *lcl lLrk xk'r*, रेडियो नाटक *jkr chru rd* और पटकथा *?kh lk* भी पढ़ेंगे। ये रेडियो नाटक और पटकथा श्रव्य-दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति के लिए हैं। प्रस्तुत इकाई इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसमें आपको श्रव्य-दृश्य माध्यमों की विशेषताएँ बताते हुए उनके लिए लेखन की विशेषताओं के साथ-साथ सृजनात्मक साहित्यिक लेखन से उनका संबंध भी बताया जाएगा।

यहाँ 'श्रव्य-दृश्य' और 'माध्यम' शब्दों पर गौर कीजिए। 'श्रव्य' और 'दृश्य' के मायने तो आप जानते हैं यानी वह जो हमें सुनाई और दिखाई दे, जिसे हम सुन और देख सकते हों। अब दूसरा शब्द है 'माध्यम' जो यहाँ अंग्रेज़ी के 'मीडिया' (media) के पर्याय के रूप में प्रयुक्त है। इसका अर्थ है जनसंचार माध्यम यानी टेलीविज़न, रेडियो, अखबार तथा पत्र-पत्रिकाएँ, फिल्म आदि। 'मीडिया' शब्द अंग्रेजी के 'मीडियम' (medium) से बना है।

इस तरह J0;-n'; ek/;e अंग्रेजी के Audio-Visual Media का हिंदी पर्याय हैं। मीडिया से तात्पर्य संप्रेषण और संचार माध्यमों से है। मीडिया दो तरह का होता है– प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। अखबार, पत्रिकाएँ, प्रिंट मीडिया के अंतर्गत और श्रव्य-दृश्य माध्यम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत आते हैं। सिनेमा और रेडियो के आविष्कार के बाद दृश्य-श्रव्य माध्यम संप्रेषण और संचार के महत्त्वपूर्ण माध्यम बने। बाद में टेलीविज़न और कम्प्यूटर के आ जाने के बाद दृश्य-श्रव्य माध्यमों ने दुनिया भर को न केवल बहुत तेज गति से जोड़ दिया बल्कि प्रिंट मीडिया की तुलना में अधिक निकटता और सहजता का बोध श्रोता/दर्शक को कराना आरंभ कर दिया। अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ प्रिंटिंग प्रेस के आगमन के बाद सुलभ हुए थे और उन्होंने मनुष्य के मन-बुद्धि को बहुत गहराई से प्रभावित किया था। जानने, सीखने-सिखाने, वाणिज्य, व्यापार, प्रशासन, जन जागरण, मनोरंजन सभी क्षेत्रों में छपाई से उपलब्ध संचार साधनों ने क्रांति उत्पन्न कर दी थी। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने इस दिशा में और भी व्यापक कदम बढ़ाया क्योंकि यह उन तक पहुँचने में सक्षम था जो पढ़ नहीं सकते या अपने कामकाज के बीच जिन्हें पढ़ने की फुरसत नहीं मिलती। रेडियो तो व्यक्ति अपना काम करते हुए भी सुनता रहता है। टेलीविज़न ने दूर-दूर की दुनिया को हमारे सामने ला दिया है। आज तो इन श्रव्य-दृश्य माध्यमों का हमारे जीवन से हर कदम पर जुड़ाव है। इंटरनेट, मोबाइल फोन आदि आ जाने से मीडिया हमारे हर वक्त के साथी हो गए हैं और जीवन के लगभग सभी कार्यों में इनका दखल है।

इस तरह श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए लेखन की चर्चा के अंतर्गत jfM;k] fluek vkj Vyhfo tu के लिए लेखन आता है। रेडियो श्रव्य माध्यम है और टेलीविज़न तथा सिनेमा श्रव्य-दृश्य दोनों। इस इकाई में रेडियो तथा छोटे-बड़े दोनों तरह के पर्दे (टेलीविज़न और सिनेमा) के लिए लेखन की चर्चा होगी।

पिछली इकाई में एकांकी तथा अन्य नाट्य विधाओं के विषय में पढ़ते हुए आप यह भी जान गए हैं कि दृश्य विधा होने के कारण साहित्य की अन्य विधाओं से नाटक कुछ अर्थों में भिन्न होता है। इसे पढ़ा नहीं जाता देखा या सुना जाता है। इसमें कथा की सूचना नहीं मिलती, कथा घटित होती हुई प्रस्तुत होती है। यानी कि इसमें कार्य व्यापार वर्णन विवरण नहीं होता अभिनेताओं द्वारा उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया जाता है। श्रव्य-दृश्य माध्यम इस प्रस्तुति में तकनीकी आयाम जोड़कर इसे जीवंत और प्रत्यक्ष बनाते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि साहित्य का दृश्य रूप प्राचीन काल से ही मानव समाज में मौजूद है। वक्त के साथ-साथ इसका संस्कार-परिष्कार और विकास होता रहा है। अपने अनुभवों, भावों और विचारों को प्रत्यक्ष और मूर्त रूप प्रदान करने के लिए मनुष्य ने अनुकरण का सहारा लिया और अनुकरण की तरह-तरह की प्रविधियों का विकास किया। अपने शरीर की गतियों, मुद्राओं–भांगिमाओं द्वारा, अपनी वाणी के द्वारा – वाणी के विभिन्न स्वरों, लहजों, उतार-चढ़ावों द्वारा – जीवन की विभिन्न स्थितियों और कार्यों के अनुकरण के साथ-साथ उसने अनुकरण की विभिन्न तकनीकों और प्रविधियों का सहारा लिया। वेशभूषा, रूप-सज्जा, मंच-सज्जा, मंच

उपकरणों आदि की सहायता से अभिनय को अधिकाधिक संप्रेषणीय और प्रभावपूर्ण बनाने की प्रक्रिया निरंतर विकसित होती रही। नाटक को प्रस्तुत करने की तरह-तरह की विधियाँ, शैलियाँ, प्रविधियाँ और तकनीकें विकसित होती रहीं। विज्ञान के विकास के साथ-साथ जब हमें जीवन में विभिन्न तकनीकी और मशीनी साधन उपलब्ध हुए तो दृश्य-विधाओं में भी उनका उपयोग हुआ। वैज्ञानिक साधनों के आगमन ने हमारे जीवन में, हमारे रहन-सहन के स्वरूप और पद्धति में बहुत बड़े परिवर्तन किए। स्वाभाविक ही था कि दृश्य-विधा की प्रस्तुतियों के स्वरूप और शैलियों पर भी इनका व्यापक प्रभाव पड़ता और दृश्य-विधा पूरी तरह से इलेक्ट्रॉनिक साधन सम्पन्न हो जाती।

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं किस तरह नाटक नाम की दृश्य-विधा रेडियो नाटक के रूप में श्रव्य-विधा बन गई। नाटक देखा नहीं सुना जाने लगा और श्रोता को सुनते हुए दृश्य जैसा आनंद प्राप्त होने लगा। रेडियो के लिए नाट्य प्रस्तुति को रिकार्ड किया जाने लगा और एक बार रिकार्ड कर लेने के बाद उसे बार-बार प्रसारित करना संभव हो गया, दूर-दूर तक के श्रोताओं को सुनाना संभव हो गया।

सिनेमा और टेलीविजन आदि के आगमन से दृश्य-विधा में नया आयाम जुड़ा। प्रस्तुति अब जीते-जागते इन्सानों की बजाय उनकी तस्वीरों के माध्यम से होने लगी। हम कार्यरत मनुष्य की बजाय कार्यरत मनुष्य का चित्र देखने लगे। मंच का स्थान पर्दे ने ले लिया और व्यक्ति का स्थान उसकी प्रतिकृति (तस्वीर) ने। अनुकरण अब भी अभिव्यक्ति का माध्यम रहा बस फर्क इतना था कि सजीव अनुकरण के स्थान पर अब दर्ज किया गया (रिकार्डेड) अनुकरण प्रस्तुत किया जाने लगा। रेडियो पर भी रिकार्डेड प्रस्तुति की जाती है लेकिन वहाँ केवल आवाज़ की रिकार्डिंग होती है श्रव्य माध्यम ही काम में लाया जाता है। सिनेमा और टी.वी. पर्दे पर श्रव्य और दृश्य दोनों का इस्तेमाल होता है।

19-3 J0;-n'; ek/;ek dk Lo:i vkSj fo'ys"k.k

श्रोता/दर्शक दृश्य माध्यमों पर दृश्य और आवाज़ दोनों की प्रस्तुति ही देखता-सुनता है, उसे महसूस होता है कि सब कुछ उसके सामने घटित हो रहा है जीते-जागते व्यक्तियों द्वारा। फर्क इतना ही है कि यह घटित होने अथवा किए जाने का वास्तविक अनुकरण नहीं है। उस अनुकरण की रिकार्डेड रील अथवा फिल्म की छाया पर्दे पर दिखाई दे रही है जो हमें उन घटनाओं, बातों, स्थितियों का आभास करा रही है। यह वास्तविक सजीवता न होकर सजीवता का आभास है जो बिल्कुल असली प्रतीत होता है। तकनीकी माध्यमों द्वारा की गई ये दृश्य प्रस्तुतियाँ जीवंत प्रस्तुतियों से भिन्न भले ही न हों उनसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। जीवंत की प्रतिकृति होने के बावजूद यह दर्शक को जीवंत स्थितियों का अहसास कराती हैं। फिल्म अथवा टेलीविज़न देखते हुए हमें यह भी नहीं महसूस होता है कि कोई तस्वीर देख रहे हैं। थोड़ी देर के लिए हम भूल जाते हैं कि ये वास्तविक अभिनय न होकर उसकी छाया है। रेडियो पर सुनते हुए भी हमें आवाज़ की सजीवता का अहसास होता है और दृश्य हमारी कल्पना में जीवंत हो उठता है। इतना ही नहीं रिकार्ड, केसैट या ऑडियो-वीडियो टेप के माध्यम से हम जब चाहें इन प्रस्तुतियों को देख-सुन सकते हैं।

19-3-1 fp=k vkSj fcack dh Hkk"kk

हम चर्चा कर चुके हैं कि 'श्रव्य' माने जो सुनाई दे रहा है और 'दृश्य' माने जो दिखाई दे रहा है। यानी कान और आँख की सहायता से जिसे हम ग्रहण कर रहे हैं। श्रव्य-दृश्य में प्राकृतिक दुनिया भी शामिल है और मानव निर्मित दुनिया भी। मनुष्य ने जो कुछ प्रकृति से पाया उसका अनुकरण करते हुए चित्रांकन या मूर्ति निर्माण करने के प्रयास वह आरंभ काल से ही करता रहा है। जीव-जंतुओं, मनुष्यों और प्रकृति के विविध छवियों को वह अनादि काल से उकेरता रहा है। साहित्य में उसने शब्दों के माध्यम से उन्हें प्रस्तुत किया है और ऐसा करते हुए उसने ग्रहणशील कल्पना और सर्जनात्मक कल्पना को आधार बनाया है। विज्ञान के विकास के बाद उसे इन दृश्य छवियों को जीवंत और गतिशील बनाने की सुविधा मिली। माइक्रोफोन, रिकार्डिंग और प्रसारण की सुविधा मिलने पर उसके लिए आवाज़/आवाज़ों को दर्ज कर सुरक्षित करना और दूर-दूर तक प्रसारित करना संभव हुआ। फोटोग्राफी आने से दृश्य जगत को दर्ज करने की सुविधा मिली और चल फोटोग्राफिक छवियों के अथवा गति छायांकन (motion photography)

के माध्यम से सिनेमा दृश्य जगत की जीवंत रिकार्डिंग हो सकी। आरंभ में सिनेमा में गति तो थी लेकिन यह मूक दृश्यावली थी। आवाज़ के अभाव ने सिनेमा में एक नई भाषा को जन्म दिया। वह थी तस्वीरों की भाषा यानी ''इसमें तस्वीरें खुद बोलती थीं। चित्रों के सहारे कहानी कह देने की यह कला कैमरे के पास-दूर, इधर-उधर जा सकने से मिलने वाले तरह-तरह के चित्रों और इस तरह खींचे हुए चित्रों को उनमें संबंध पैदा करने वाले क्रम से जोड़ने की युक्ति से विकसित हुई। मूकपट के दौर में दिग्दर्शकों ने इस कला में इतनी महारत हासिल कर ली कि बगैर संवाद सुने भी ज्यादातर कहानी दर्शकों की समझ में आने लगी।'' (मनोहर श्याम जोशी)

19-3-2 n'; vkj /ofu ,d-nljs dk iljd

जब सिनेमा में आवाज का समावेश हुआ चित्र के साथ-साथ ध्वनि भी रिकार्ड की जाने लगी तो संवादों का महत्त्व बढ़ा लेकिन मंचीय नाटक की तरह यह पूरी तरह संवादों पर आधारित नहीं हो सका क्योंकि प्रस्तोता और दर्शक दोनों ही दृश्य चित्रों और बिम्बों की सशक्त भाषा के उपयोग के इतने आदी हो चुके थे कि उनसे वंचित नहीं होना चाहते थे। फिल्म ने बिम्बों और ध्वनियों की अपनी-अपनी रूपात्मक भाषा विकसित कर ली है।

इस तरह दृश्य माध्यमों में श्रव्य और दृश्य एक दूसरे के पूरक होकर प्रभावी बने। संचार माध्यमों के महत्त्व और प्रसार में वृद्धि के साथ दृश्य-श्रव्य भाषिक अभिव्यक्ति एक नई तकनीक के रूप में उभरी।

19-4 ephp; iLrqfr vkj jfM;k@inkZ ij iLrqfr dk chp vrj

आपके मन में सवाल होगा कि श्रव्य-दृश्य माध्यम के लिए लेखन को नाटक लेखन से अलग पाठ के रूप में क्यों पढ़ाया जा रहा है। ध्यान रखने की बात है कि ek/;e cnyus ls fdlh dk;Z dk Lo:i vkj mlds djus dh izfØ;k esa Hkh cnyko vkrk gSA

1) नाटक एक ऐसी प्रस्तुति है जिसे अभिनय द्वारा अभिनेता दर्शकों के सामने प्रस्तुत करते हैं इसकी प्रस्तुति हर बार नए ढंग से होती है। श्रव्य-दृश्य माध्यम उस प्रस्तुति को टेप या फिल्म पर रिकार्ड करते हैं। टेप या फिल्म या सी.डी./डी.वी.डी. पर रिकार्ड या प्रस्तुति संचित रूप में मौजूद रहती है जिसे जब चाहें तब प्रसारित किया जा सकता है। अतः इन माध्यमों के लिए लिखी जाने वाली रचना को संचित करने की प्रक्रिया की जरूरत के अनुरूप ढालने की आवश्यकता होती है। श्रव्य-दृश्य माध्यमों की ये जरूरतें तकनीकी भी होती है और समग्र प्रभावपरक भी।

   हालाँकि हिंदी में एकांकी नाटक का आरंभ आल इंडिया रेडियो की शुरुआत के समानांतर हुआ था। रेडियो के लिए लिखे गए अनेक नाटक बाद में एकांकी के रूप में प्रकाशित हुए, मगर वे आरंभ में ही रेडियो प्रसारण की ध्वनिपरक जरूरतों को ध्यान में रख कर लिखे गए थे। अतः उनकी भाषिक संप्रेषणीयता ने उन्हें मंच पर भी सफलतापूर्वक संभव बनाया। श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए लेखन संबंधी जरूरतों के बारे में जानने से पहले नाटक की मंचीय प्रस्तुति और इन माध्यमों द्वारा प्रस्तुति के बीच अंतर को समझना जरूरी है।

2) मंचीय प्रस्तुति जीवंत प्रस्तुति होती है जबकि रेडियो पर या पर्दे पर रिकार्ड की गई प्रस्तुति को प्रसारित किया जाता है। एक बार रिकार्ड कर लिए जाने के बाद उसे बार-बार, सैकड़ों बार, हजारों बार दिखाया जा सकता है। किसी नाटक का मंचन भी बार-बार हो सकता है, किंतु हर मंचन अपने आप में नया होता है। चाहे वे ही कलाकार और प्रस्तोता टीम उसमें भाग ले रही हों, किंतु वे लोग उसका हर बार नया सृजन करते हैं। यह नहीं कि वह अपने पहले किए गए मंचन की पुनरावृत्ति नहीं करते। निश्चय ही वह उसी पाठ को दुबारा-तिवारा और बार-बार मंचित करते हैं। लेकिन मानवीय प्रयास हर बार नए सिरे से होता है इसलिए पिछले प्रयास से कहीं न कहीं थोड़ा-बहुत भिन्न होता है कहना चाहिए अनायास ही भिन्न हो जाता है। यह भिन्नता प्रस्तुति को बेहतर भी बना सकती है और कमजोर भी। मानवीय पुनरावृत्ति जीवंत होती है। जबकि श्रव्य-दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुत पुनरावृत्ति यांत्रिक होती है। जीवंत होने के कारण उसमें प्रस्तोता टीम का संवेदनात्मक पक्ष मौजूद रहता है। उनके आपसी तालमेल, संयोजन, समन्वयन, उल्लास-उत्साह-हताशा सभी उसे प्रभावित करते हैं। रिकार्ड किए जाते समय भी टीम की पारस्परिकता एक-दूसरे को प्रभावित करती है लेकिन रिकार्डिंग और उसकी एडिटिंग होने तक ही

इसकी आवश्यकता होती है। उसके बाद दर्शकों को जो कुछ देखने को मिलता है वह एक ही प्रस्तुति की पुनरावृत्ति होती है जब तक कि उसमें कुछ काट-छाँट कर पुनः संपादित (edit) न किया जाय।

3) मंचीय प्रस्तुति उपस्थित दर्शक समूह के समक्ष होती है। अतः दर्शकों की प्रतिक्रिया जीवंत प्रस्तुति को भरपूर प्रभावित करती है। उसका प्रभाव अगली प्रस्तुतियों तक चलता है। कहा जा सकता है कि नाट्य प्रस्तुति में दर्शकों की साझीदारी होती है। अपनी पसंद से वे प्रस्तोताओं का मनोबल बढ़ाते हैं अपनी नापसंद प्रस्तुत कर उन्हें हतोत्साहित भी करते हैं। उनका कुछ न व्यक्त करना और एकाग्र होकर तल्लीनता से नाट्य प्रस्तुति देखना भी नाट्य प्रस्तुति टीम के लिए उत्साहवर्धक होता है क्योंकि वे समझ लेते हैं कि प्रस्तुति दर्शकों का ध्यान बाँधे हुए है।

   इसके विपरीत सिनेमा, टेलीविज़न या रेडियो नाट्य प्रस्तुति स्टूडियो में कैमरे और माइक के समक्ष की जाती है। प्रस्तोताओं को दर्शकों की तात्कालिक प्रतिक्रिया का लाभ नहीं मिलता। निर्देशक और उन सहकर्मियों को कल्पना करनी होती है कि रिकार्ड की गई प्रस्तुति दर्शकों या श्रोताओं को कैसे प्रभावित करेगी। अतः इसमें अनुमान की बड़ी भूमिका रहती है। इसके साथ ही दर्शकों से जीवंत संपर्क के अभाव में अभिनेताओं के उत्साह एवं मनोबल बढ़ाने या नियंत्रित करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती उन्हें एक मैकेनिकल परिस्थिति में अपनी जीवंत प्रस्तुति देनी होती है। उन्हें कैमरे से बात करनी होती है। माइक की जरूरतों के हिसाब से अपने स्वर को नियंत्रित करना होता है। एक बार यदि सही रिकार्डिंग नहीं हो पाई तो एक ही दृश्य अथवा एक ही संवाद को दोबारा-तिबारा रिकार्ड कराना होता है। इसका फायदा यह होता है कि सबसे बेहतर प्रस्तुति वाली रिकार्डिंग को अंतिम माना जाता है बाकी सब को खारिज करके हटा दिया जाता है। लेकिन इसका नुकसान यह भी होता है कि प्रस्तुति की सहजता और मौलिकता इसमें कायम नहीं रह पाती।

4) रिकार्ड किए गए और जीवंत कलाकारों द्वारा प्रस्तुत नाटक में अंतर यह होता है कि मंचीय प्रस्तुति अपने आप में अंतिम होती है। जो कहा गया है, जो अभिनय किया गया है वह अंतिम होता है उसे दोहराया नहीं जा सकता। प्रस्तोता को आगे ही बढ़ना होता है जबकि स्टूडियो प्रस्तुति बार-बार दोहराई जा सकती है जब तक कि संतोषजनक प्रतीत न हो।

5) मंचीय प्रस्तुति लगातार चलती है और एक बार में पूरी हो जाती है दृश्य परिवर्तन के बीच कोई छोटा विराम हो तो भले ही हो। फिल्म की शूटिंग/रिकार्डिंग छोटे-छोटे टुकड़ों में की जाती है कई भागों में की जाती है। उनके बीच कई दिनों, महीनों तक का अंतराल हो सकता है क्योंकि खंड-खंड रिकार्डिंग कर उसे आखिर में क्रमबद्ध रूप दिया जाता है। इसके लिए जरूरी नहीं कि शुरू से आरंभ करके आखिर तक सीधे-सीधे चला जाए। जब जिस अंश को रिकार्ड करने की सुविधा हो तब उसे रिकार्ड किया जा सकता है। फिर अलग-अलग रिकार्डिंग अंशों को तरह-तरह के फूलों के गुलदस्ते में सजाने के ढंग पर इकट्ठा और क्रमबद्ध किया जा सकता है। यदि जरूरत महसूस हो तो लिखी गई स्क्रिप्ट में बदलाव भी किया जा सकता है। एक ही दृश्य या संदर्भ की एक से ज्यादा रिकार्डिंगों में से बेहतर को चुनने, एडिटिंग करने की प्रक्रिया में प्रोड्यूसर डायरेक्टर की परिकल्पना और भूमिका लेखक से ज्यादा नहीं तो समकक्ष अवश्य रहती है।

6) दृश्य परिवर्तन की व्यवस्था नाटक और स्क्रीन दोनों पर होती है। पटकथा के दृश्य बहुत जल्दी-जल्दी बदलते हैं जबकि नाटक की मंचीय प्रस्तुत में दृश्य अपेक्षाकृत धीरे-धीरे। कारण नाटक में पूरे रंगमंच को कभी एक स्थल विशेष के रूप में दिखाया जाता है, तो कभी उसमें विभिन्न स्थानों के लिए अलग-अलग मंच की साज-सज्जा की जाती है जो अलग स्थानों की सूचक होती हैं। इस विधि से स्थान परिवर्तन को दिखा दिया जाता है सुदूर के स्थलों का बोध करा दिया जाता है। इस तरह मंचीय प्रस्तुति दर्शक की कल्पना को भी सक्रिय रख सकती है। किंतु सिनेमा या टी.वी. दर्शक को घटनाओं को यथार्थ दिखाने का प्रयास करते हैं।

   पर्दे पर दृश्य जल्दी बदलता है वहाँ एक दृश्य एक ही स्थान विशेष को सूचित करता है उदाहरण के लिए, यदि अभिनेता को घर के बाहर से भीतर पहुँचना है तो अलग-अलग दृश्यों की परिकल्पना करनी होती है।

इसके अतिरिक्त फिल्म की शूटिंग अलग-अलग शॉट के रूप में अलग-अलग समय में विभिन्न स्थलों पर की जाती है। अतः दृश्य बदलने की सुविधा और जरूरत दोनों ही होती है। इसलिए पटकथा लिखते हुए दृश्य परिवर्तन बहुत जल्दी-जल्दी कराया जाता है। कुछ मिनट से ज्यादा शायद ही कोई दृश्य चलता हो। पटकथा लेखक न केवल दृश्य परिवर्तन के संकेत देता है बल्कि यह भी बताता है कि कैमरा किस स्थान पर किस पात्र पर फोकस करेगा, कहाँ अंधेरा रहेगा, प्रकाश किस तरह उभरता दिखाया जाएगा।

ck/k iz'u

1. श्रव्य-दृश्य माध्यम क्या हैं? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. सही (√) और (×) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

   क) फिल्म अथवा टेलीविज़न देखते हुए हमें महसूस नहीं होता कि हम अभिनय नहीं उसकी तस्वीर देख रहे हैं।

   ख) आरंभ में आवाज़ के अभाव में मूक सिनेमा ने तस्वीरों की भाषा को जन्मवा दिया।

   ग) टेलीविज़न या सिनेमा में श्रव्य और दृश्य एक-दूसरे से भिन्न प्रस्तुति करते हैं।

vH;kl

1. मंचीय प्रस्तुति और श्रव्य-दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति में अंतर बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

19-5 J0;-n'; ek/;eksa ds fy, dk;ZØe fuekZ.k dh izfØ;k

रेडियो, टेलीविज़न आदि मौखिक माध्यम हैं। इनके कार्यक्रम पढ़कर या बोल कर प्रसारित या प्रस्तुत किए जाते हैं। अतः मौखिक प्रस्तुति इनका स्वरूप निर्मित करती है। फिल्म भी मौखिक माध्यम है। हम यह भी कह सकते हैं कि प्रिंट मीडिया लिखित सम्प्रेषण माध्यम है और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और फिल्में मौखिक संप्रेषण माध्यम। लेकिन यह मौखिक संप्रेषण आमने-सामने का न होकर दूर से प्रसारित किया गया संप्रेषण होता है। स्टूडियो में रिकार्ड किया गया कार्यक्रम विद्युत तरंगों और सेटेलाइट की सहायता से सुदूर स्थलों तक पहुँचाया जाता है। फिल्म की शूटिंग स्टूडियो और आउटडोर दोनों जगह होती है तथा फिल्म को प्रोजेक्टर या वी.सी.आर या डी.वी.डी., सी.डी. आदि उपकरणों की सहायता से दिखाया जाता हैं। फिल्म की काफी सामग्री आउटडोर स्टूडियो से बाहर विभिन्न स्थलों पर भी रिकार्ड की जाती है फिर उसे स्टूडियो में एडिट कर अंतिम रूप दिया जाता है। इस तरह अधिकांश सामग्री रिकार्ड करने के बाद प्रसारित की जाती है थोड़े बहुत कार्यक्रम तत्काल प्रस्तुत और प्रसारित होते हैं जिन्हें जीवंत (लाइव) प्रसारण कहा जाता है। ये अक्सर किन्हीं आयोजनों, सभाओं, भाषणों का जीवंत प्रसारण होते हैं अथवा उनका आँखों देखा हाल होता है। कई साक्षात्कार की चर्चाएँ भी आयोजित होती है। इनके अलावा बातचीत, वार्ता या संगोष्ठी के रूप में प्रस्तुत होने वाले अनेक कार्यक्रम भी पहले रिकार्ड करके संपादित कर लिए जाते हैं और फिर निश्चित दिन और समय पर उनका प्रसारण किया जाता है।

आपके मन में सवाल उठ रहा होगा कि जब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मौखिक प्रसारण माध्यम हैं तो इनके लिए लेखन की क्या आवश्यकता है? आपका सवाल अपनी जगह सही है। इसी बिंदु पर हम आपको बताना चाहते हैं कि प्रसारित की जाने वाली सामग्री का बहुत ही कम हिस्सा ऐसा होता है जिसे लिखे बिना रिकार्ड किया जाता है। प्रसारित की जाने वाली अधिकांश

सामग्री को रिकार्ड करने से पहले लिखकर तैयार किया जाता है। लिखना इसलिए आवश्यक होता है कि

1) रेडियो, टी.वी. आदि के कार्यक्रमों का निर्माण (प्रोडक्शन) तकनीकी कार्य होता है। प्रोडक्शन कार्य मनुष्य और टेक्नोलॉजी की सहभागिता से सम्पन्न होता है।

2) प्रसारण या पर्दे पर दिखाने के लिए समय की सीमा निर्धारित होती है जिसका अक्सर विधिवत पालन किया जाता है।

3) माइक्रोफोन अथवा कैमरे पर आशु (तात्कालिक) प्रस्तुति करने की क्षमता और कला भी दुर्लभ होती है।

यह स्वाभाविक है कि अक्सर रिकार्डिंग से पहले उसकी स्क्रिप्ट तैयार कर ली जाती है। समाचार जो कि लाइव (बोलते या पढ़ते हुए सीधे प्रसारण) प्रस्तुत किए जाते हें उन्हें भी पढ़ने से पहले लिखा जाता है। डॉक्यूमेंट्री, नाटक, फीचर, वृत्तचित्र आदि के प्रसारण के लिए स्क्रिप्ट अनिवार्य होती है फिल्म निर्माण के लिए भी पटकथा आवश्यक होती है। विषय विशेष पर आधारित कार्यक्रम को भी स्क्रिप्ट के आधार पर तैयार किया जाता है इस तरह श्रव्य-दृश्य मीडिया के कार्यक्रमों की अधिकांश रिकार्डिंग से पहले उसकी लिखित स्क्रिप्ट तैयार की जाती है।

19-6 byDVªkfud ek/;ek dh Hkkf"kd fof'k"Vrk

प्रसारित करने या पर्दे पर दिखाने के लिए किया जाने वाला लेखन छपाई के लिए किए जाने वाले लेखन से अपने माध्यम के कारण भिन्न होता है। प्रसारण चाहे वह रेडियो पर हो या टेलीविजन पर वह अपने आप में एक जीता-जागता प्रकाशन होता है जो वर्तमान काल में गतिशील होता है। कहने का मतलब यह कि वह रिकार्ड भले ही पहले से कर लिया गया हो प्रस्तुत किए जाते समय वह तत्काल घटित होने का अहसास कराता है। इसलिए प्रसारण के उद्देश्य से किया जाने वाला लेखन अपने आप में एक खास दृष्टि और लेखन शैली की अपेक्षा रखता है।

किसी पुस्तक या पत्रिका का पाठक उसको लगातार पढ़ सकता है या बीच-बीच में रुक कर पढ़ सकता है चाहे तो कई पैराग्राफों या पन्नों को छोड़-छोड़ कर पढ़ सकता है। कोई बात ठीक से समझ न आई हो तो पीछे के पन्ने से पलटता हुआ दोबारा पढ़ सकता है लेकिन प्रसारित होने वाली सामग्री तो लगातार प्रस्तुत होती है। दर्शक या श्रोता उसे दोबारा देख या सुन नहीं सकता। अतः सुनी हुई देखी हुई बात उसे तुरंत समझ आनी चाहिए यानी संप्रेषित होनी चाहिए। इसके लिए स्क्रिप्ट लेखक को प्रयास करना होता है कि वह श्रोता का ध्यान तुरंत आकृष्ट कर सके। उसे यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास करना होता है कि प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री का अर्थ स्पष्ट हो और उसका हर पक्ष श्रोता/दर्शक को समझ आ सके।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रेडियो या पर्दे पर सुनाई-दिखाई जाने वाली बातें या सूचनाएँ सुनने-देखने वालों को तत्काल घटित होती महसूस होती हैं भले ही उन्हें पहले से रिकार्ड करके रखा गया हो। वह वर्तमान में घटित होने का अहसास कराती हैं किसी पुरानी घटना की रिपोर्ट देने का नहीं। जिस तरह समाचार वाचन और श्रवण की प्रक्रिया भी समानांतर चलती है उसी तरह रेडियो पर प्रस्तुत रूपक नाटक या टी.वी. पर प्रस्तुत फिल्म की प्रस्तुति भी श्रोता या दर्शक समानांतर सुनता-देखता है।

इस तरह प्रसारित कार्यक्रम समय और स्थान की दूरी लाँघते हुए वर्तमान और निकट उपस्थिति का आभास कराते हैं। उनकी यह विशिष्टता उनके लिए तैयार की जाने वाली सामग्री के लेखन को भी प्रभावित करती है। वहाँ विवरण की बजाय घटित हो रही घटना अथवा किया जा रहा कार्य प्रस्तुत होना चाहिए। यह बात सूचना प्रधान सामग्री पर भी लागू होती है और मनोरंजक प्रधान सामग्री पर भी।

तकनीकी शब्दावली में कहा जा सकता है कि J0;-n'; ek/;ek dk fy, fy[kuk okrkZyki dk lp;u djuk gA ekbØkQku ;k dSejs ls mlI okrkZyki dk fjdkMZ djuk mlI lfpr okrkZyki dh iqu% ikfIr g ;kuh mlI thor cukuk gA इस तरह जीवंत बनाया गया वार्तालाप जब रेडियो-टीवी पर प्रसारित हो तब श्रोता/दर्शक को यह महसूस होना चाहिए कि प्रस्तोता उससे उसके समक्ष बातचीत कर रहा है/रहे हैं, उसे पढ़ कर सुना नहीं

रहा/रहे। इसलिए यह आवश्यक होता है कि पहले से तैयार की गई सामग्री भी स्वाभाविक और अनायास रूप से प्रस्तुत होती महसूस हो। अतः संचार माध्यमों पर प्रस्तुति के लिए लिखी गई सामग्री मौखिक भाषा में अथवा सम्प्रेषणीय बोलचाल की शैली में लिखी जाती है। उसमें व्यक्तिगत बातचीत की निकटता का अहसास कराने का प्रयास किया जाता है। शब्दावली और शैली दोनों की दृष्टि से लेखक का ध्यान उच्चारित शब्दों की ओर रहता हैं। आपसी बातचीत में हम परिचित शब्दों का इस्तेमाल करते हैं अपनी बात को थोड़े और छोटे वाक्यों में प्रस्तुत करते हैं। इस तरह सामान्य लेखन से दृश्य-श्रव्य माध्यमों के लेखन में कई तरह की भिन्नता होती है। केवल पढ़े जाने के लिए लेखन में अपरिचित शब्द, लम्बे वाक्य और बड़े-बड़े पैराग्राफ भी आम प्रचलन में होते हैं, जबकि वार्तालाप में हम अपने विचारों को सीधे-सीधे संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं।

श्रव्य-दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुत कार्यक्रम सामग्री कई प्रयोजनों के लिए तैयार की जाती है जिनमें महत्त्वपूर्ण हैं— मनोरंजन, सूचना और शिक्षा। प्रस्तुति के कई रूप हैं जैसे वार्ता, कमेंट्री, नाटक प्रहसन, विज्ञापन, सिनेमा आदि। शैक्षिक कार्यक्रमों में भी वार्ता, संवाद, भाषण, डेमॉन्सट्रेशन आदि के साथ-साथ नाटक शैली भी प्रयोग में लाई जाती है। दिलचस्प बात यह है कि उपर्युक्त तीनों उद्देश्यों के लिए इनमें से किसी भी रूप को अपना सकते हैं या एक से अधिक रूपों का भी एक ही कार्यक्रम में उपयोग कर सकते हैं।

19-7 y[ku d i dkj

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर प्रस्तुत होने वाले मनोरंजन के कार्यक्रमों में फिल्म, नाटक, प्रहसन, स्क्रिप्ट, धारावाहिक आदि आते हैं इनके लिए स्क्रिप्ट संवादात्मक कथा के रूप में होती है। सूचना और शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों में फीचर, वार्ता या साक्षात्कार, परिचर्चा, डॉक्यूमेंट्री, विज्ञापन आदि शामिल हैं इनके लिए विवरणात्मक स्क्रिप्ट, प्रश्नावली, चर्चा के मुद्दों की सूची कमेंट्री आदि तो लिखी ही जाती है, सूचना का नाट्य-रूपांतर भी तैयार किया जाता है। कभी-कभी विवरण और नाट्य-रूपांतर दोनों का भी इस्तेमाल किया जाता है। नाटकीयता का इस्तेमाल श्रव्य और दृश्य दोनों माध्यमों के लिए लेखन में किया जा सकता है। उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों के लिए सूचना और कल्पना की सर्जनात्मकता के मेल से स्क्रिप्ट लेखन किया जाता है।

fLØIV@iVdFkk

श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए लेखन स्क्रिप्ट लेखन कहलाता है। स्टूडियो में माइक्रोफोन या कैमरे के आगे प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री भाषा, विषय, प्रस्तुति के स्वरूप और समय की दृष्टि से पूर्णतया नियंत्रित होती है इसलिए इसे प्रोडक्शन स्क्रिप्ट भी कहा जाता है। फिल्मी पर्दे-सिनेमा और टेलीविज़न के लिए पर्दे — पर प्रस्तुत की जाने वाली स्क्रिप्ट को हिन्दी में पटकथा कहा जाता है। कोई भी कथ्य जिसे पर्दे पर दिखाया जाता है उसको प्रस्तुत करने के लिए (चाहे वह छोटा-सा विज्ञापन अथवा प्रहसन ही क्यों न हो) उसकी पटकथा तैयार की जाती है। पटकथा में जितना भाषा (यानी उच्चारित शब्द) कहती है उतना ही दृश्य चित्र भी कहते हैं। पात्र जो बोलते हैं उसके अतिरिक्त पर्दे पर मौजूद दृश्यावली, बिम्ब, वस्तुएँ वातावरण भी बहुत कुछ बोलते हैं। वह सम्पूर्ण कथ्य के लिए परिवेश तो तैयार करते ही हैं, कथ्य के प्रभाव को गहन बनाते हैं। इस तरह मानवीय भाषा और चित्रों की भाषा आपस में गुँथ कर अधिक सम्प्रेषणीय और प्रभावकारी बन जाती है। वैसे दृश्य प्रभाव मंच पर प्रस्तुत किए जाने वाले नाटकों में भी बहुत महत्त्वपूर्ण होता है लेकिन वहाँ प्राथमिक महत्त्व शब्दों का ही होता है किन्तु पर्दे पर दृश्य बिम्ब शब्दों के समकक्ष महत्त्व रखते हैं। यदि केवल अभिनेताओं की शारीरिक गतिविधियों और संवाद प्रस्तुति को ही रिकार्ड कर प्रसारित किया जाय, दृश्य-बिम्ब का उपयोग न किया जाय तो वह दर्शकों को बिल्कुल 'मैकेनिकल' (यांत्रिक) और बेजान प्रतीत होगा। यहीं सिनेमा और रंगमंच का बड़ा भारी अंतर प्रकट होता है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति की माली हालत दिखाने के लिए घर में मौजूद या आस-पास की वस्तुएँ बता सकती हैं कि वह मध्यवर्गीय व्यक्ति है या विपन्न या धनवान। रंगमंच पर एक-दो वस्तुओं से प्रतीकात्मक संकेत दिया जा सकता है; पर्दे पर दिखाने के लिए कैमरा पूरे कक्ष पर या उसके बाहर के हिस्से पर भी घूमेगा उसकी माली हालत दृश्यों के माध्यम से प्रकट की जाएगी।

19-7-1 jfM;k fLØIV

श्रव्य माध्यमों पर मौखिक प्रस्तुति के लिए लिखी जाने वाली स्क्रिप्ट के विषय में संक्षेप में हम कह सकते हैं कि

1) उसकी भाषा में रोजमर्रा इस्तेमाल होने वाले ऐसे शब्दों के प्रयोग का प्रयास होता है जिन्हें ज्यादा-से-ज्यादा लोग समझ सकें। इसके मायने यह नहीं कि केवल सरल शब्दों का ही प्रयोग होता है। ऐसा हो तो जटिल विषयों पर बात ही न हो सके। जहाँ आवश्यक हो वहाँ अप्रचलित शब्दावली का प्रयोग भी जरूरी है, तकनीकी शब्द भी जरूरी है। अप्रचलित शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ उनका आशय स्पष्ट करने की कोई युक्ति निकाली जाती है, अतिरिक्त वाक्यांश या वाक्य जोड़कर ऐसा किया जा सकता है उदाहरण के लिए, पर्यावरण संतुलन संबंधी निम्नलिखित वार्ता की स्क्रिप्ट देख सकते हैं–

   ''पर्यावरण के विनाश के लिए हम भी जिम्मेदार हैं। आजकल हम विकास के नाम पर बहुमंजिली इमारतें बनाते हैं। सड़के बनाते हैं। इनके लिए ज़मीन पाने के लिए तो किसानों की ज़मीन कौड़ी कीमत पर खरीद लेते हैं या फिर जंगलों की कटाई करते हैं। इसके कारण बाढ़, भूमि के कटाव, धरती के धँसने आदि की संभावना बढ़ जाती हैं। क्योंकि अपनी जड़ों से ज़मीन को थामे रखने वाले पेड़ों का हमने नाश कर दिया है।''

   ''क्योंकि'' से शुरू होने वाला वाक्य पहले कही गई बात को समझने के लिए है।

2) वाक्य छोटे होते हैं किंतु प्रयास किया जाता है कि पूरी स्क्रिप्ट असंबद्ध छोटे-छोटे वाक्यों की लड़ी न बन जाए। छोटे बड़े वाक्यों के बीच संतुलन बनाते हुए ध्यान रखा जाता है कि किसी एक वाक्य में उतने शब्दों का ही प्रयोग हो कि उन्हें एक साँस में पढ़ा जा सके।

3) बातचीत के लहजे में एक तरह की लय और सामंजस्य होता है। स्क्रिप्ट लिखते समय जब इस लय को ध्यान में रखा जाता है तभी स्क्रिप्ट सम्प्रेषणीय बन पाती है।

4) स्क्रिप्ट में तात्कालिकता का तत्व मौजूद होना चाहिए। इसके लिए वर्णन-विवरण से बचते हुए बोलने-बतियाने का भरसक प्रयास किया जाता है।

5) किसी बात के पुनर्कथन (दोबारा कहने) से श्रोता को ठीक-ठीक समझने में सुविधा होती है। लेकिन इसके मायने यह नहीं कि एक ही बात दोहराई जाय। बल्कि कही गई बात को ऐसे स्पष्ट किया जाए कि वह पुनरावृत्ति न प्रतीत हो, उदाहरण के लिए, शिशुओं की देखभाल संबंधी इस कार्यक्रम की भाषा पर ध्यान दें–

   > ''बच्चों को उबला पानी दिया जाना चाहिए। पानी को तब तक आग पर गर्म करते रहना चाहिए जब तक उसमें बुलबुले उठकर भाप न निकलने लगे।''

यहाँ आशय यह जानकारी देता है कि पानी अच्छी तरह उबाला जाय।

सार रूप में कहा जा सकता है कि हर शब्द को उच्चारित करके देख लेना चाहिए कि उसे सहजता से बोला जा सकता है या नहीं अगर वह सहज उच्चारित नहीं होता तो उसका इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। याद रखना चाहिए कि स्क्रिप्ट एक रचनात्मक कृति भी है और प्रोडक्शन टीम के लिए संकेत नियंत्रक कागज भी।

19-7-2 fluek vkj Vyhfotu dh iVdFkk

टेलीविज़न पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रम कई तरह के होते हैं और उनमें से अधिकतर की स्क्रिप्ट तैयार की जाती है लेकिन भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की स्क्रिप्टों की जरूरतें अलग-अलग होती हैं। मसलन, समाचार जो एक या दो व्यक्तियों द्वारा पढ़े जाते हैं, उन्हें लिखकर समाचार बुलेटिन तैयार कर लिया जाता है उनमें निर्देश दे दिया जाता है कि पढ़ने के दौरान बीच-बीच में कहाँ-कहाँ दृश्य छबियाँ भी दिखाई जाएँगी और वे छबियाँ अथवा दृश्य कौन-कौन से होंगे। यदि किसी व्यक्ति से साक्षात्कार लिया जाता है तो उसकी प्रश्नावली पहले से तैयार कर ली जाती है भले ही बातचीत की शैली में पूछा जाए। यदि किसी घटना या घटनाओं की रिपोर्ट दी जानी है तो उनका वृत्तचित्र तैयार कर लिया जाता है। वृत्तचित्र की भी पटकथा तैयार की जाती है जिसमें कमेंट्री, वार्तालाप, साक्षात्कार, नाट्य रूपांतर आदि कई तरह की चीज़ें शामिल की जाती हैं। इसके अलावा मनोरंजनपरक कार्यक्रमों की तो स्क्रिप्ट

यानी पटकथा तैयार की ही जाती है। फिर फ़ीचर फिल्मों, टेली-फिल्मों, टेलीविजन धारावाहिकों, सूचनापरक, शैक्षिक, सांस्कृतिक वैज्ञानिक आदि क्षेत्रों संबंधी जानकारी प्रदान करने वाले वृत्तचित्रों, प्रचारात्मक जानकारी प्रदान करने वाले विज्ञापनों की पटकथा अलग-अलग तरह की होती है।

कहा जा सकता है कि पटकथा श्रव्य-दृश्य माध्यमों की आधारभूत जरूरत है। इसलिए यह सृजनात्मक लेखन का एक विशिष्ट क्षेत्र है। विशिष्ट इसलिए कि यह लेखन पाठक के पढ़ने के लिए नहीं होता। इसका उपयोग तकनीकी माध्यमों द्वारा कार्यक्रम या फिल्म निर्माण के लिए किए जाता है। जिसमें प्रस्तोता अथवा अभिनेतागण, कैमरा टीम तथा अन्य तकनीकी सहायक शामिल होते हैं। पटकथा उन सभी को सामूहिक रूप से कार्य करने के लिए दिशा-निर्देश का खाका भी होती है यानी इसमें यह तो बताया ही जाता है कि किसे क्या बोलना है, कैसे बोलना है, कितनी देर में पूरा करना है। इसके साथ-साथ पटकथा में यह भी बताया जाता है कि कैमरा कहाँ किस कोण से कितनी देर फोकस करेगा। कब कौन से ध्वनि प्रभाव इस्तेमाल होंगे, कैसी प्रकाश व्यवस्था कहाँ जरूरी होगी, आदि-आदि।

इस तरह पटकथा कार्यक्रम के प्रोडक्शन का नक्शा खींचती है और कार्यक्रम के समय को भी निर्धारित करती है यानी कार्यक्रम बीस मिनट का है, आधा घंटे का है या फिल्म एक-डेढ़ घंटे की है या दो घंटे की।

इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि पटकथा श्रव्य-दृश्य माध्यमों की आधारभूत जरूरत है साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि पटकथा लिखने वाले को स्टूडियो के परिवेश यानी माइक, कैमरा, प्रकाश व्यवस्था, संगीत, ध्वनि-प्रभाव, अभिनय, संवाद-प्रस्तुति आदि से परिचित होना चाहिए ताकि वह पटकथा लेखन के दौरान यह परिकल्पना कर सके कि उस पटकथा की दृश्य-श्रव्य प्रस्तुति किस प्रकार की जाएगी।

पटकथा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की जरूरत के अनुसार लिखी जाती है। उनका कोई बँधा-बँधाया ढाँचा नहीं होता न ही लेखन का कोई निश्चित फार्मूला। हाँ, इतना निश्चित है कि उसमें कथा की वर्णनात्मकता यानी narrative का तत्व इस अर्थ में मौजूद रहता है कि उसमें आरम्भ, मध्य और अंत की विकास प्रक्रिया रहती है। विषय विशेष को या कथा अथवा प्रसंग विशेष को पटकथा लेखक अपनी सर्जनात्मक क्षमता और कल्पना के द्वारा एक निश्चित रूप प्रदान करता है जिसमें कथात्मकता मौजूद रहती है।

19-7-3 y[ku dh fof'k"Vrk,¡

सिनेमा और टेलीविजन के लिए लेखन की अपेक्षाओं में अंतर होता है। यह अंतर दोनों की जरूरतों पर आधारित है। दोनों अलग-अलग माध्यम हैं। बुनियादी समानताओं के बावजूद इनमें कई तरह की भिन्नताएँ हैं। इसलिए टेलीविजन छोटे पर्दे और सिनेमा के बड़े पर्दे के लिए लेखन की अपेक्षाओं में अंतर होता है। यह अपेक्षाएँ दोनों पर होने वाली प्रस्तुति, उसके प्रभाव तथा देखने के स्थान और उससे निर्मित दर्शकों की मनोभूमिका से पैदा होती है।

टेलीविजन एक ऐसा यंत्र है जिसे किसी छोटे कमरे या हॉल में रखकर देखा जा सकता है। टेलीविजन का स्क्रीन छोटा होता है, इसलिए उस पर दिखाई देनी वाली आकृतियां भी छोटी दिखाई देती हैं, लेकिन सिनेमाघर की तुलना में टेलीविजन से दर्शक की दूरी भी ज्यादा नहीं होती। इसे हम जब चाहें तब चला सकते हैं बंद कर सकते हैं। टेलीविजन हम अंधेरे कक्ष में नहीं देखते कमरे की रोशनी में देखते हैं घर परिवार या मित्रों के साथ भी देखते हैं और अकेले भी। फुरसत में भी देखते हैं और कोई काम करते हुए भी। कहने का मतलब है कि टेलीविजन देखना एक अनौपचारिक स्थिति है जबकि फिल्म देखने के लिए हम विशेष मानसिकता बना कर थिएटर में (सिनेमा हॉल में) जाते हैं। पूरी तरह फिल्म देखते हैं– देखने के साथ में और कुछ नहीं करते। ऐसी स्थिति में टेलीविज़न और सिनेमा दोनों को ध्यान से देखने के बावजूद हमारी एकाग्रता समान नहीं होती। सिनेमा में हम पूरी तरह एकाग्र होते हैं जबकि टेलीविज़न देखने में हमारी एकाग्रता स्वैच्छिक होती है, चाहें तो उस पर पूरी तरह ध्यान दें, चाहें तो मनचाहे ढंग से किसी अन्य कार्य को भी करते चलें।

सिनेमाघर की एक और स्थिति भी औपचारिक परिवेश पैदा करती है। ऑडिटोरियम में बैठे सभी दर्शक फिल्म देखने आए हैं वे सामूहिक रूप से फिल्म देख रहे हैं। एक ही कथा अथवा घटना अथवा स्थिति के आस्वाद में भागीदार होते हुए भी वे एक दूसरे से अलग-अलग हैं यानी वे

जो महसूस कर रहे हैं उस पर सामान्यतया अपनी प्रतिक्रिया फिल्म देखने के बाद व्यक्त करते हैं। फिल्म देखते समय ध्यान रखते हैं कि दूसरे दर्शकों के आस्वाद में बाधा न पहुँचे। लेकिन टेलीविजन देखने के अनौपचारिक वातावरण में हम अपनी थोड़ी बहुत प्रतिक्रियाएँ भी देते रहते हैं या प्रतिक्रियाओं की आपसी साझीदारी भी करते हैं। इसके अलावा भोजन करते हुए, चाय पीते हुए टेलीविज़न पर प्रस्तुति का आस्वाद काफी सहजता से लेते हैं। कहने का मतलब यह है कि दर्शक एक-दूसरे को बीच में डिस्टर्ब भी कर लेते हैं जरूरी बातचीत भी कर लेते हैं। यह औपचारिक तथा अनौपचारिक वातावरण दर्शकीय संवेदना को तो प्रभावित करता ही है दृश्य माध्यम से होने वाली प्रस्तुति की अपेक्षाओं को भी प्रभावित करता हैं।

सिनेमा की प्रस्तुति पूर्ण अंधेरे में होती है जबकि टेलीविजन हम अक्सर रोशनी में देखते हैं। इसका असर भी दोनों के लिए तैयार किए जाने वाले प्रस्तुति आलेख स्क्रिप्ट अथवा पटकथा पर पड़ता है। टेलीविज़न पर दर्शक की आँखें लगातार एकटक नहीं टिकी रहती जबकि सिनेमाघर के अंधेरे में दर्शक की नज़र लगातार पर्दे पर रहती है।

बड़े पर्दे पर पात्र के मौन अथवा मूक अभिनय का प्रभाव बेहतर और गहरा पड़ता है। छोटे पर्दे पर पात्रों की चुप्पी की स्थिति में दर्शक का ध्यान पर्दे से हटने की संभावना अधिक रहती है।

टेलीविजन में संवाद का महत्त्व इसलिए भी ज्यादा होता है कि छोटे पर्दे पर बहुत दूर के शॉट ज्यादा प्रभावशाली नहीं होते। शारीरिक मुद्राएँ और आंगिक चेष्टाएँ एक खास दूरी से ही फिल्माए जाने पर छोटे पर्दे पर उभर पाती हैं। अतः आवाज़ और शब्दों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। ज्यादातर पात्र बोलते हुए ही फिल्माए जाते हैं इसलिए दृश्य बिम्बों की विविधता नहीं रहती।

फिल्म और टेलीविजन में दृश्य बिम्बों की भाषा और संवाद प्रस्तुति में भी अंतर होता है। टेलीविजन में दूर के ज्यादा शॉट न रहने के कारण चेहरे की भाषा देह भाषा से ज्यादा उपयोग में आती है। तद्नुरूप संवाद भी प्रभावित होते हैं।

इसके अलावा टेलीविज़न में फिल्मों की जैसी सेटों की विविधता भी नहीं होती क्योंकि दोनों के बजट में अंतर होता है। ऐसे में संवादों की जरूरत और महत्त्व बढ़ जाता है। सिनेमा और टेलीविजन को देखने की स्थितियों के अंतर और दोनों की तकनीकी भिन्नताओं का प्रभाव दोनों के लेखन पर पड़ता है। इन बातों का ध्यान सिनेमा की पटकथा और टेलीविज़न की पटकथा लिखते हुए रखा जाता है।

1½ fQYek dh iVdFkk

श्रव्य-दृश्य माध्यमों का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप सिनेमा है। सिनेमा की पटकथा लिखे जाने के बारे में दिलचस्प बात यह है कि इसका स्वरूप ढीला-ढाला (flexible) होता है और कसाव वाला भी। हर फिल्म निर्माता का अपना दृष्टिकोण और कार्य करने का ढंग होता है। कुछ लोग पहले पटकथा तैयार करने के बाद शूटिंग करते हैं कुछ अलग-अलग दृश्यों और घटना खंडों (एपिसोड) की शूटिंग के बाद उनकी पटकथा तैयार कर उन्हें फिल्म की अंतर्योजना में गूँथते हैं। फिल्म की शैली – यानी फिल्म गंभीर है या यथार्थपरक या हास्यप्रधान या जासूसी – का असर उसकी पटकथा लेखन पर पड़ता है।

2½ Vyhfotu /kkjkokfgd dh iVdFkk

आपने टेलीविजन पर बहुत से धारावाहिक (serial) देखे होंगे। सप्ताह में एक या अधिक दिन प्रस्तुत होने वाले ये सीरियल महीनों और सालों चलते हैं। हर दिन इनमें कथा की एक नई घटना (एपिसोड) दिखाई जाती है। नए प्रसंग की शुरुआत होती है पुराने प्रसंगों को आगे बढ़ाया जाता है। सीरियल की पटकथा विभिन्न खंडों में विभाजित होती है। ये धारावाहिक कई बार प्रसिद्ध रचनाओं पर आधारित भी होते हैं जैसे 'रामायण', 'महाभारत' या 'मैला आँचल', 'रागदरबारी' आदि या फिर विशेष रूप से टेलीविज़न के लिए ही लिखे गए 'हम लोग' और 'बुनियाद' की तरह काल्पनिक धारावाहिक भी। ये ऐपिसोड एक बार में तैयार न होकर धीरे-धीरे तैयार किए जाते हैं। पटकथा लेखक हर एपिसोड में शामिल होने वाले प्रसंगों को चुन कर दृश्यात्मक प्रस्तुति के अनुरूप इस तरह ढालता है कि हर खंड मुख्य कथा को आगे बढ़ाता महसूस हो और खंड की समाप्ति दर्शक में जिज्ञासा जगाए कि आगे क्या होने वाला है।

3½ iVdFkk dh Hkk"kk

फिल्म या धारावाहिक की प्रस्तुति में बोले गए शब्द यानी संवाद का जितना महत्त्व होता है उतना ही अनुच्चारित शब्द यानी मौन का। पात्र जो कुछ बोलते हैं उसे कैसे बोलते हैं यानी उनके कहने का लहजा, मुख मुद्रा, चेहरे के हाव-भाव, शरीर की मुद्रा, शारीरिक गति आदि भी महत्त्वपूर्ण होती है। पटकथा लेखक इसकी पूरी गुंजाइश भाषा में रखता है तथा आवश्यक संकेत देता चलता है। यदि पटकथा लेखन और फिल्म निर्देशन का कार्य एक ही व्यक्ति करता है तब तो निर्देशक को स्वयं इन पक्षों की परिकल्पना रहती है यदि दोनों काम अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं निर्देशक को पटकथा में दृश्य और श्रव्य तत्वों को तलाशना होता है पटकथा लेखक द्वारा दिए गए श्रव्य-दृश्य संकेतों को पहचानना और उसका उपयोग करना होता है। दृश्य छवियों के विभिन्न पहलुओं के रूपाकार उनके हृदय और मस्तिष्क में होने वाली हलचलों और गतिविधियों और उनके संवादों का तालमेल बैठाना होता है। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध फिल्म 'मदर इंडिया' को लें। एक विधवा किसान औरत जिसकी सारी फसल बाढ़ में नष्ट हो चुकी है बेघर और बरहाली में अपने दो बच्चों को साथ लिए किसी तरह जीवन के लिए संघर्ष कर रही है। यहाँ बातचीत बहुत ही कम है या न के बराबर है। कमर के नीचे तक पानी भरी एक झोंपड़ी के छप्पर को किसी तरह साधे बच्चे को लगातार खड़ा किए है क्योंकि बैठ जाने पर पानी में डूबने का खतरा है। उसकी असहाय भुखमरी का बयान दृश्य छवियाँ ज्यादा प्रभावशाली ढंग से कर देती है।

19-7-4 oÙkfp=

'वृत्तचित्र' शब्द अंग्रेजी के डॉक्यूमेंट्री (documentry) का हिन्दी पर्याय है। वृत्तचित्र किसी विषय विशेष के बारे में सूचनाएँ देने वाला कार्यक्रम होता है। फिल्मों या धारावाहिकों से वृत्तचित्र इस अर्थ में भिन्न होता है कि फिल्म कल्पना का आश्रय लेती है जबकि वृत्तचित्र तथ्यों का। 'डॉक्यूमेंट' का अर्थ ही 'दस्तावेज़' यानी आलेखों द्वारा पुष्ट कागजात है। वृत्तचित्र तथ्यों का श्रव्य-दृश्य दस्तावेज होता है। अतः डॉक्यूमेंट्री अथवा वृत्तचित्र को यथार्थपरक तथ्यों पर आधारित श्रव्य-दृश्य विवरण कहा जा सकता है।

वृत्तचित्र मनोरंजनपरक भी होते हैं, और सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, विज्ञानपरक तथा प्रकृति से जुड़े विषयों पर आधरित भी। आरम्भ में वृत्तचित्र सिनेमाघरों में फिल्म से पहले दिखाए जाते थे। सूचना और प्रसारण मंत्रालय के फिल्म प्रभाग द्वारा तैयार किए जाने वाले इन वृत्तचित्रों का उद्देश्य महत्त्वपूर्ण और जरूरी सूचनाओं को जनसामान्य तक पहुँचाना था। टेलीविजन के आ जाने के बाद वृत्तचित्रों के विषयों और प्रसारण का विस्तार हुआ है।

वृत्तचित्र तैयार करने के लिए निम्नलिखित चरणों में कार्य किया जाता है–

क) fo"k; p;u & यानी तय करना कि वृत्तचित्र किस विषय पर तैयार किया जाएगा।

ख) 'kks/k & विषय तय करने के बाद यह शोध करना कि उस विषय पर क्या-क्या लिखित और दृश्य सामग्री कहाँ-कहाँ उपलब्ध है।

ग) ykds'ku dh [kkst ¼LFkku fu/kkj.k½& यह पता लगाना कि किस स्थान/स्थानों की शूटिंग की जाएगी।

घ) fo'k"kKksa का पता लगाना और तय करना कि उस विषय के विशेषज्ञ कौन हैं। किन विशेषज्ञों से पटकथा तैयार कराई जाएगी, किन से परिचर्चा की जाएगी। किन से स्टूडियो या उनके अपने कक्ष में बातचीत की जाएगी और किन से किसी लोकेशन पर कैमरे के सामने रिकार्ड किया जाएगा।

ङ) विषय के अनुकूल lxhr@/ofu iHkko lxgA

उपर्युक्त तैयारी के पश्चात् वृत्तचित्र निर्माता विषय की कच्ची रूपरेखा तैयार करके शूटिंग कर लेते हैं। फिल्माए गए दृश्यों (फुटेज) को आधार बनाते हुए वृत्तचित्र की पटकथा लिखी जाती है जिसे कमेंट्री या वॉयस ओवर कहा जाता है। कभी-कभी ऐसा भी किया जाता है कि किसी विषय पर शोध करने के बाद पहले पटकथा का ढाँचा तैयार कर लिया जाय और उसके आधार पर शूटिंग की जाय। इस स्थिति में शूटिंग को कमेंट्री से जोड़ते हुए स्क्रिप्ट की एडिटिंग की जाती है।

वृत्तचित्र के लिए लेखन दृश्य लेखन होता है यानी इसे दृश्य-दर-दृश्य लिखा जाता है। यानी पहले कौन-सा दृश्य होगा फिर कौन-सा, फिर कौन-सा। ऐसे लिखते हुए हर दृश्य का पूरा विवरण दिया जाता है। यह भी बताया जाता है कि कैमरा उस दृश्य पर किस स्थिति में, किस कोण से, किस गति (पैन, ट्राली, आदि) से रोल करेगा। शॉट किस प्रकार का कितनी देर का होगा, प्रकाश व्यवस्था कैसी होगी। संगीत, ध्वनि-प्रभाव, संवाद, वॉयस ओवर, कमेंट्री और उन्हें बोलने संबंधी निर्देश भी दिए जाते हैं। इस तरह यह अनेक तकनीकी अपेक्षाओं से जुड़ा लेखन होता है। अपनी इन विशेषताओं के कारण इस लेखन को दृश्य लिपि (Visual Script) लेखन भी कहा जा सकता है।

इस तरह हम देखते है कि विषय चयन के पश्चात् वृत्तचित्र निर्माता और पटकथा लेखक यह करते हैं कि उन्हें इस कार्यक्रम के माध्यम से क्या-क्या कहना है और कैसे कहना है। यानी उस वृत्तचित्र को तैयार करने का क्या उद्देश्य है और उस उद्देश्य को किस तरह दृश्यात्मक स्वरूप प्रदान किया जाएगा। दृश्य क्या होंगे और शब्द उन दृश्यों को किस तरह जीवंत बनाएँगे; दोनों के माध्यम से प्रस्तुत कथा क्या संदेश देगी; दर्शक उसे कैसे ग्रहण करेंगे। इस पूरी प्रक्रिया के बीच वह यह भी तय करते हैं कि वृत्तचित्र को क्या नाम दिया जाय जो विषय के अनुरूप भी हो और आकर्षक भी।

19-7-5 deVªh@ok;l vkoj ;kuh oÙkfp= dh iVdFkk

पटकथा लेखन का संबंध बुनियादी तौर पर कथात्मक फिल्मों और धारावाहिकों के लिए होता है। किंतु इनके अतिरिक्त श्रव्य-दृश्य माध्यमों पर प्रसारित अन्य कार्यक्रमों के लिए भी लेखन किया जाता है जिनमें से महत्त्वपूर्ण है कमेंट्री (commentry) लेखन। दृश्य सामग्री के लिए लिखी गई कथा जिसे दृश्यों की पृष्ठभूमि में बोलकर प्रस्तुत किया जाता है, उसे वॉयस ओवर (Voice Over) कहा जाता है। आपने गौर किया होगा कि बहुत से ऐसे कार्यक्रम टी.वी. पर प्रस्तुत किए जाते हैं जिनमें चल रही फिल्म पर टिप्पणी किसी महिला अथवा पुरुष की आवाज़ में दी जाती है यह टिप्पणी विवरण के रूप में होती है और दर्शक को पर्दे पर चल रही फिल्म के विषय में विस्तार से बताती जाती है। लेकिन जिनकी आवाज का इस्तेमाल किया जाता है, उनको दिखाया नहीं जाता और न ही यह बताया जाता है कि कौन बोल रहा है। आम तौर पर कमेंट्री शब्द का इस्तेमाल आँखों देखा हाल के लिए किया जाता है जैसे क्रिकेट मैच का आँखों देखा हाल, गणतंत्र दिवस की परेड का आँखों देखा हाल। पर वृत्तचित्र के विवरण (नैरेशन) के लिए भी कुछ लोग कमेंट्री शब्द इस्तेमाल कर देते हैं। आजकल इसके लिए सर्वथा उपयुक्त शब्द वॉयस ओवर प्रयुक्त होता है।

इस तरह कमेंट्री दो तरह की होती है– ,d तो किसी कार्यक्रम के बीच-बीच में मौजूद रहते हुए दूर-दूर तक दर्शकों को उसका विवरण-वर्णन सुनाते रहना, उसकी विशेषताएँ बताना और उसके अलग-अलग खंडों को जोड़ना। nl j किसी विषय विशेष पर फोटोग्राफी या वीडियो रिकॉर्डिंग करने के बाद उसे कार्यक्रम का रूप देते हुए उस पर कमेंट्री तैयार करना। वीडियो पर आधारित इस कमेंट्री की स्क्रिप्ट लिख कर उसकी ऑडियो प्रस्तुति कराना वॉयस ओवर है।

टेलीविजन या धारावाहिकों से कमेंट्री इस अर्थ में अलग होती है कि पटकथा को लेखनी से ज्यादा कैमरा लिखता है। आरम्भ में योजना का एक कच्चा प्रारूप तैयार करके विषय विशेष पर शोध किया जाता है और फिर अपेक्षित दृश्यों की शूटिंग कर ली जाती है। इस तरह इकट्ठे किए गए दृश्यों को फुटेज (footage) कहते हैं। यदि अपेक्षित हो तो कुछ लोगों से इंटरव्यू या घटनाओं और स्थितियों का नाट्य रूपांतर कर लिया जाता है।

फिर आरंभिक योजना के अनुसार फुटेज को संपादित किया जाता है। इस प्रक्रिया में निश्चित हो जाता है कि किन दृश्य छवियों पर वॉयस ओवर यानी कमेंट्री की जानी है। अब दृश्य छवियों को देखते हुए वृत्तचित्र की योजना के अनुरूप कमेंट्री लिखी जाती है। इस तरह तैयार किए गए वीडियो कार्यक्रम अक्सर सूचनापरक और ज्ञानवर्धक विषयों के होते हैं यद्यपि इनमें मनोरंजन का तत्व भी शामिल होता है। ये कार्यक्रम डॉक्यूमेंट्री किस्म के भी होते हैं और फीचर किस्म के भी। इनकी प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये कैमरे पर चलते दृश्यों को कथ्य और आवाज़ से जोड़ते हैं उनके विषय में दर्शक को जानकारी देते हुए उनके ज्ञान का विस्तार करते हैं। उदाहरण के लिए, आप 'डिस्कवरी' या 'नेशनल ज्योग्राफिक' चैनल या 'हिस्ट्री' चैनल पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रमों पर गौर करें, ये कार्यक्रम सूचना प्रदान करते है लेकिन उनकी

प्रस्तुति बहुत रोचक होती है। इसी तरह ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक विषयों अथवा सामाजिक समस्याओं पर बने वृत्तचित्र समय-समय पर विभिन्न प्रसारण चैनलों पर दिखाए जाते हैं। अतः कमेंट्री लिखने वाले व्यक्ति को विषय विशेष के संबंध में न केवल समस्त मौजूदा सूचना इकट्ठी करनी होती है बल्कि उसके अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों पर ध्यान देना होता है। यानी उस विषय पर अपेक्षित शोध करना होता है। यह शोध स्थान विशेष पर जाकर, लोगों से बातचीत करके भी किया जा सकता है और पुस्तकालयों, संग्रहालयों, औद्योगिक स्थलों या ऐसे ही अन्य स्थलों पर उपलब्ध सामग्री देख पढ़ कर भी।

शोध की इस प्रक्रिया में कल्पना, तर्क, विवेचन-विश्लेषण का उपयोग करते हुए आख्यान (narration) तैयार किया जाता है। यह आख्यान दिलचस्प भी होना चाहिए ताकि दर्शक की रुचि उसमें बनी रहे और वह कार्यक्रम के द्वारा दी जाने वाली सूचना से लाभान्वित हो सके। इसलिए अक्सर कमेंट्री में कहानीपन या कथात्मकता का तत्व मौजूद रहता है। आरम्भ, विकास और अंत का क्रम मौजूद रहता है। खंड-खंड, चित्रों, दृश्यों, घटनाओं को एकसूत्रता में पिरोते हुए सम्बद्ध जानकारी दी जाती है। इसका मतलब यह नहीं कि कमेंट्री तकनीकी रूप से कहानी विधा होती है। कहने का तत्पर्य यह है कि कमेंट्री में भी तथ्यों या घटनाओं तथा उनसे जुड़ी सूचनाओं पर आधारित एक विवरण तैयार किया जाता है जिसमें आरंभ, मध्य और अंत का क्रम चलता है। कमेंट्री लेखक इसका ढाँचा विषय के अनुरूप तथ्यों तथा अपनी सर्जनात्मक कल्पना के आधार पर निर्मित करता है।

दृश्य शृंखला और कमेंट्री में अभिन्न संबंध बनाए रखना कमेंट्री लेखक का अनिवार्य दायित्व होता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि वह अलग-अलग रिकार्ड किए चित्रों अथवा चित्र शृंखलाओं को अपनी कमेंट्री के माध्यम से एक विशेष पहचान प्रदान करता है उन चित्रों/चित्र शृंखलाओं की कहानी बनाते हुए उन्हें एक निश्चित रूप प्रदान करता है। ऐसे में बुनियादी जरूरत इस बात की होती है कि शब्द न केवल चित्रों और दृश्यों से अभिन्न रूप से संबद्ध हों बल्कि उन्हें व्याख्यायित भी करें और दर्शक को रोचक और ज्ञानवर्द्धक सूचनाओं से अवगत कराएँ। शब्द और दृश्य का तालमेल आवश्यक हैं जो कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है उसे शब्दों में कहने की जरूरत नहीं है। खास तौर से कमेंट्री लिखते समय ध्यान रखना चाहिए कि अपने आप में बोलती तस्वीर को फालतू शब्दों की जरूरत नहीं होती। बल्कि इससे स्क्रिप्ट उबाऊ हो जाती है। शब्द और चित्र एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए प्रतिलिपि नहीं।

कमेंट्री लेखक अक्सर वर्णन-विवरण का सहारा लेता है किंतु आवश्यकता पड़ने पर कमेंट्री को रोचक और संप्रेषणीय बनाने के लिए छोटे-मोटे नाट्य-प्रसंग को भी शामिल कर सकता है। इसके लिए वह तथ्यों का नाट्य रूपांतरण करता है।

19-7-6 foKkiu

विज्ञापन रेडियो, टीवी, सिनेमा आदि सभी पर दिखाए जाते हैं विज्ञापन कई तरह के होते हैं। (i) कमर्शियल (वाणिज्य-व्यापार संबंधी) विज्ञापन, (ii) सामाजिक जागरूकता के विज्ञापन, (iii) सूचना के लिए सरकारी विज्ञापन, (iv) रोज़गार संबंधी विज्ञापन।

रेडियो और छोटे-बड़े पर्दे पर विभिन्न कार्यक्रमों के विज्ञापन हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं और कभी-कभी अपने प्रचार की भरमार से हमारे भीतर ऊब भी पैदा करते हैं क्योंकि ये जबरन हमारे समय पर कब्जा कर अपनी बात कहते हैं। विज्ञापन का उद्देश्य श्रोता/दर्शक को सूचना देने के साथ-साथ उसमें उस सूचना/वस्तु को पाने/अपनाने की इच्छा जगाना है। सरकारी सूचना संबंधी विज्ञापनों का उद्देश्य जनसामान्य को जानकारी देना और उसके अनुसार कार्रवाई के लिए प्रेरित करना होता है। इसलिए विज्ञापन का संप्रेषणीय और रोचक होना अनिवार्य है। विज्ञापन की परिकल्पना, पटकथा लेखन, उसका ऑडियो/वीडियो, कार्यक्रम निर्माण तथा एक विशेषज्ञता का क्षेत्र माना जाता है। विज्ञापन की स्क्रिप्ट बहुत छोटी अक्सर एक-दो मिनट की होती है।

देखने वाले या सुनने वाले का ध्यान आकृष्ट करने के लिए विज्ञापन में विवरण-वर्णन, नाटकीयता, अभिनय, हास्य-व्यंग्य, आदि सभी युक्तियों का सहारा लिया जाता है। उत्पाद के प्रचार को प्रभावी बनाने के लिए कल्पना और जानकारी का सर्जनात्मक इस्तेमाल किया जाता हैं एक-दो मिनट में दो-चार वाक्यों में पूरी बात ऐसे कह दी जाती है/दिखा दी जाती है कि

दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करे और उसे पसंद आए। उसमें उसे मानने और पाने की ललक पैदा हो।

यह भी जरूरी है कि विज्ञापन में किसी माल के प्रचार के लिए भाषा और कथ्य में एकरूपता होनी चाहिए। भाषा और कथ्य अशिष्ट न हो, न ही किसी के लिए अपमानजनक और समाज विरोधी हो। उदाहरण के लिए, 'डालर बिग बॉस' नाम का हौजरी का एक विज्ञापन आता है जिसमें एक बुजुर्ग नेता वोट माँग रहा है तभी एक युवक अपनी कमीज उतारकर उसके मुँह पर फेंकता है और बुजुर्ग से अपमानजनक भाषा में कहता है ''तू फिट नहीं, इसलिए तुझे वोट नहीं।'' हिंदी भाषा में अपने से बड़ों को आप या तुम कहते हैं तू का प्रयोग अशिष्ट है। कह सकते है कि यह विज्ञापन का उदाहरण उपयुक्त नहीं है और इससे दर्शकों के बीच गलत संदेश जाता है।

ck/k iz'u

3. 'हाँ' या 'नहीं' में उत्तर दीजिए–
   - क) सिनेमा और टेलीविजन के लिए लेखन के बीच कोई अंतर नहीं होता। ( )
   - ख) किसी फिल्म को सिनेमा के पर्दे और टेलीविजन दोनों पर देखा जा सकता है। ( )
   - ग) टेलीविजन और सिनेमाघर में दर्शक समान परिवेश में फिल्म देखता है। ( )
   - घ) दूर के शॉट छोटे पर्दे पर ज्यादा प्रभावशाली होते हैं। ( )
   - ङ) धारावाहिक छोटे पर्दे के लिए लिखे जाते हैं। ( )

4. वृत्तचित्र किसे कहते हैं ?

   ....

   ....

   ....

5. वॉयस ओवर किसे कहते है?

   ....

   ....

vH;kl

2. श्रव्य-दृश्य माध्यमों के लिए लेखन की भाषिक विशिष्टताएँ क्या हैं?

   ....

   ....

   ....

   ....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

19-8 lkfgfR;d vkj ehfM;k y[ku d chp vrj

इस भाग में हम साहित्यिक लेखन और मीडिया लेखन में अंतर पर विचार करेंगे। रेडियो लेखन, सिनेमा और टेलीविजन के भिन्न प्रकृति का होता है लेकिन साहित्यिक लेखन से ये कैसे भिन्न है, इस पर विचार करना भी जरूरी है।

19-8-1 lkfgfR;d y[ku vkj jfM;k d fy, y[ku

आप सोच सकते हैं कि जो व्यक्ति लिखना जानता है वह किसी भी माध्यम के लिए लिख सकता है। लेकिन ऐसा नहीं है। जिस तरह साहित्य की हर विधा का लेखन अपने आप में विशिष्ट होता है और रचनाकार अपनी रुचि और अभिव्यक्ति क्षमता के अनुरूप विधा का चयन करता है उसी तरह हर माध्यम के लेखन की अलग-अलग अपेक्षाएँ होती हैं और व्यक्ति जिस माध्यम के लिए, लिख रहा है उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप लेखन उसे करना होता है। उदाहरण के लिए कोई घटना घटित होती है तो पत्रकार उसकी यथातथ्य रिपोर्टिंग करता है ऐसा करते हुए उस पर अपनी ओर से टिप्पणी भी करता है। उसके सम्भावित कारणों का उल्लेख भी कर सकता है किंतु वह कम से कम शब्दों का इस्तेमाल करते हुए यथार्थ से पाठक को अवगत कराता है। दूसरी ओर एक कहानीकार उसी घटना के यथार्थ में कल्पना का समावेश

कर सम्भावित कारण और परिणाम को कार्य-कारण शृंखला में जोड़ते हुए उसे मार्मिक साहित्य के स्तर तक पहुँचा सकता है। संवेदना की गहनता उभार सकता है। पाठक का उस कृति को एक बार पढ़ने के बाद चाहे तो दोबारा भी पढ़ सकता है। लेकिन रेडियो के श्रोता को यह सुविधा नहीं। प्रस्तोता की बात श्रोता एक बार में पूरी तरह समझ आनी चाहिए और वह भी उसके शब्दों से। मंच प्रस्तुति करने वाले कलाकार या दृश्य माध्यमों के कलाकार की भाव-भंगिमाएँ, मुद्राएँ उठने-बैठने-चलने की गति सभी कुछ न कुछ कहते/अभिव्यक्त करते हैं लेकिन रेडियो पर केवल शब्दों और स्वर के उतार-चढ़ाव से ही सब कुछ प्रकट करना होता है।

ऐसे में रेडियो के लिए लेखक को पात्रों की आपसी बातचीत और ध्वनि प्रभावों के माध्यम से उजागर करना होता है। यह अपने आप में सुविधा भी है। नदी, समुद्र, शहर का ट्रैफिक, फैक्ट्री का शोरगुल, पशु-पक्षियों का स्वर, इसके अलावा और भी बहुत कुछ आवाज़ों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता हैं। जरूरत होती है ध्वनियों के सार्थक, प्रभावपूर्ण और सजीव इस्तेमाल की। रेडियो के लिए लिखने वाले को सदैव ध्यान रखना होता है कि ऐसे कहा जाय कि सुनने वाले को न केवल भली-भाँति सम्प्रेषित हो जाय बल्कि उसे महसूस हो कि वह सुनने के साथ-साथ देख भी रहा है। सिनेमा और टेलीविजन उन सब ध्वनियों को दृश्य-बिम्बों के माध्यम से दिखा भी सकते हैं सभी आवाज़ों के साथ और जरूरत पड़ने पर लिखे हुए शब्दों का इस्तेमाल भी कर सकते हैं। लेकिन रेडियो उन्हें ध्वनियों के माध्यम से व्यक्त और संप्रेषित करता है।

19-8-2 lkfgfR;d y[ku vkj iVdFkk y[ku

साहित्यिक लेखन और पटकथा लेखन के बीच बुनियादी अंतर यह है कि साहित्यिक लेखन की अपनी स्वतंत्र और स्वायत्त सत्ता होती है उसके आस्वाद के लिए पाठक को किसी अन्य माध्यम की जरूरत नहीं होती जबकि स्क्रिट (पटकथा) के आधार पर प्रसारण के लिए – वृत्तचित्र, कथाचित्र, धारावाहिक, क्विज़ शो या खेल आदि कार्यक्रम बनाया जाता है या फिल्म बनाई जाती है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि प्रस्तुत की जाने वाली हर सामग्री पटकथा के माध्यम से ही पर्दे तक पहुँचती है। इस तरह साहित्यिक कृति की तरह पटकथा की कोई स्वतंत्र और स्वायत्त हैसियत नहीं होती। वह टेलीविज़न पर या फिल्म के रूप में दिखाए जाने वाले कार्यक्रम की पूर्व-कल्पना कर उसका स्वरूप निर्धारित करती है। कार्यक्रम उसी के सहारे अपना रूप ग्रहण करता है किंतु पटकथा अपने आप में पूर्ण इकाई नहीं बन पाती।

साहित्यिक रचनाओं को श्रव्य-दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुत करने के लिए उनकी पटकथा तैयार की जाती है। फिर उसकी शूटिंग, एडिटिंग कर पर्दे पर दिखाया जाता है। प्रस्तुत खंड की इकाई 25 में आप महादेवी वर्मा लिखित संस्मरण 'घीसा' पर आधारित मन्नू भंडारी द्वारा तैयार की गई पटकथा पढ़ेंगे। आप देखेंगे कि मूल कथ्य वही रखते हुए उसे पटकथा के अनुरूप संवादों और दृश्यों में ढाला गया है। साथ ही यह निर्देश भी दिए गए हैं कि किस समय कैमरा किस पर फोकस किया जाएगा, क्या मार्जिन में रखा जाएगा, किस दृश्य पर कैमरा कितनी देर रहेगा, आदि-आदि। इसके अलावा आप यह भी देखेंगे कि संस्मरण में दिए गए अनेक विवरणों – जैसे नदी में पानी भरने आई औरतों का हुलिया – को यहाँ शामिल नहीं किया गया। इसी तरह के अन्य परिवर्तनों पर भी इस इकाई में ध्यान दिलाया गया है। इसी तरह आपने विभिन्न उपन्यासों, नाटकों, कहानियों पर बनी फिल्में देखी होंगी– प्रेमचंद के 'गोदान', 'गबन' या 'शतरंज के खिलाड़ी' पर बनी फिल्में या भारतचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'देवदास' पर बनी फिल्में या अंग्रेजी में शेक्सपियर के नाटकों पर बनी फिल्में। इन सभी फिल्मों की निर्माण के पहले पटकथा तैयार की गई जिसमें निश्चित किया गया था कि पात्रों के मुँह से क्या-क्या कहलाया जाएगा, क्या-क्या दृश्य-बिम्बों और ध्वनियों के माध्यम से कहलाया जाएगा। पटकथा लिखते हुए तय करना होता है कि डेढ़-दो घंटे की फिल्म में क्या-क्या शामिल किया जाएगा, क्या नहीं शामिल किया जाएगा। साथ ही पटकथा लेखक अपनी ओर से यदि कुछ व्यक्त करना चाहता है तो उसे क्या कहना है। सुप्रसिद्ध रचनाओं पर आधारित पटकथा में विशेष ध्यान यह रखना होता है कि क्या पात्रों से कहलवाना है, क्या दृश्य-बिंबों से। ध्यान रखने की बात है कि दृश्य-बिम्बों के माध्यम से या अन्य किसी माध्यम से कथा का काफी अंश भले ही प्रस्तुत कर दिया जाय प्रमुख पात्रों द्वारा कही गई बात या उनके द्वारा किए गए कार्य को आपस में परिवर्तित करना अक्सर ठीक नहीं रहता क्योंकि सुप्रसिद्ध रचनाओं के पात्रों की छवि पहले से दर्शक के दिमाग में मौजूद होती है। उदाहरण के लिए, गोदान में होरी को गोबर की तरह उम्र स्वभाव का नहीं दिखला सकते।

हालाँकि यदि प्राचीन या सुपरिचित कथा में कोई नई उद्भावना किसी प्रयोजन विशेष से की जाय जैसे—नया संदेश देने के लिए, व्यंग्य को उभारने के लिए तो रचनाकार या पटकथा लेखक द्वारा किया गया यह परिवर्तन स्वीकार्य और प्रभावपूर्ण भी होता है। उदाहरण के लिए, शेक्सपियर के सुप्रसिद्ध नाटक 'मैकबेथ' की कथा को आधार बनाती हुई हिन्दी फिल्म 'मकबूल' में भारतीय स्थितियों पर व्यंग्य करते हुए कथा को पूरी तरह बदल कर प्रस्तुत किया गया है। काफी लोगों ने इसे खूब पसंद किया हालाँकि कुछ लोगों को यह शेक्सपियर की रचना की घटिया नकल प्रतीत हुई।

इसी तरह इकाई 23 में, आप नुक्कड़ नाटक 'सबसे सस्ता गोश्त' पढ़ेंगे, वहाँ भाई चारे के नारे को बदल कर बैर-वैमनस्य के नारे के रूप में प्रस्तुत किया गया है ताकि दर्शक परिस्थिति में मौजूद विडम्बना को समझ सकें।

कई बार किसी अन्य भाषा की रचना पर आधारित पटकथा अपनी भाषा में तैयार की जाती है ऐसा करते हुए रचना या उस पर लिखी गई पटकथा का अनुवाद या रूपांतरण अपनी भाषा में किया जाता है जैसे बर्नार्ड शॉ के नाटक 'माई फेयर लेडी' पर बनी फिल्म का हिन्दी रूपांतरण करके 'मन पसंद' नामक फिल्म बनाई गई। इस तरह भाषिक रूपांतरण करके तैयार की गई पटकथा में काफी हद तक सांस्कृतिक रूपांतरण भी शामिल होता है।

गौर करने की बात है कि साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी, उपन्यास, नाटक आदि को फिल्म में रूपांतरित करने का प्रचलन ज्यादा रहा है बजाय कविता के। कविताएँ वही फिल्म के रूप में सामने आई हैं जिनमें कथा तत्व की प्रधानता रही है या जो मिथकीय संसार को समेटे है और जिनमें कथा तत्व मौजूद है। उदाहरण के लिए 'रामायण' और 'महाभारत' पर आधारित सैकड़ों फिल्में विभिन्न भारतीय भाषाओं में बनी हैं। उन पर हिन्दी में बने टी.वी. सीरियलों की लोकप्रियता बेजोड़ रही है। गौर करने की बात है कि इनके अलावा अन्य काव्य रचनाएँ फिल्मों का आधार नहीं बन पाईं क्योंकि कैमरा भावों को दर्ज तो कर सकता है किंतु कथानक यानी प्लॉट के अभाव में उन्हें प्रभावपूर्ण क्रमबद्ध श्रृंखला में पिरो नहीं सकता। भावना और विचार, मनःस्थितियाँ और अवधारणाएँ सभी साहित्यिक रचनाओं के केन्द्र में होती हैं लेकिन कविता उनमें से किसी एक या किन्हीं को आधार बना कर संवेदना की तीव्रता के कारण अपने आप में पूर्ण हो सकती है किंतु J0;-n'; ek/;e dk dFkk dh t:jr gksrh gSA कविता का उपयोग पटकथा में कर सकते हैं, प्रस्तुति शैली में कर सकते हैं, लेकिन कथानक के अंतर्गत।

उपन्यास और कहानी पर बनी फिल्मों और टीवी धारावाहिकों की संख्या अनगिनत हैं। लिखित कथा-साहित्य और फिल्मांकित कथा-साहित्य एक ही कला के दो प्रकार माने गए हैं। दोनों ही वर्णन-विवरण यानी आख्यान (narrative) को आधार बनाते हैं। रचनात्मक लेखन और पटकथा के बीच के रिश्तों को लेकर बहुत बहसें हुई है। फिल्मकार ग्रिफिथ अपना लक्ष्य दर्शक को चाक्षुष अनुभव प्रदान करना मानते हैं। दूसरी तरफ प्रसिद्ध उपन्यासकार कौनरोड लिखित शब्द के माध्यम से दर्शक को सुनने, महसूस करने और देखने का अनुभव प्रदान कराना चाहते हैं। इस तरह कथा-साहित्य (कहानी-उपन्यास) और फिल्म के बीच एक तरह का अभेदात्मकता का रिश्ता है। लेकिन इसके मायने यह नहीं कि कहानी या उपन्यास को ज्यों के त्यों पर्दे पर प्रस्तुत कर दिया जाता है। वास्तव में दो अलग-अलग माध्यम होने के कारण उपन्यास और फिल्म एक ही कथा को अलग-अलग और नए-नए तरीकों से प्रस्तुत करने के लिए आग्रहवान दिखाई देते हैं।

19-9 ikMD'ku fLØIV

पटकथा यानी पर्दे के लिए लिखते समय जिस बात को सर्वाधिक वरीयता दी जाती है वह है, घटना विशेष या स्थिति विशेष को दिखाने में लगने वाला समय। फिल्म चाहे बड़े पर्दे पर दिखाई जाए या छोटे पर्दे पर उसके लिए समय निर्धारित होता है अतः पटकथा लेखक को घटनाओं के दृश्यों में लगने वाले समय का हिसाब रखना होता है यानी कौन-सी बात या स्थिति कितनी देर पर्दे पर दिखाई जाएगी। पूरे घटनाक्रम को समयबद्ध कर लेने के बाद वह यह भी तय करता/करती है कि कौन-सा दृश्य किस तरफ से दिखाया जाएगा, कौन-सी घटना सूचित की जाएगी। इसलिए स्क्रिप्ट में दृश्यों को गिनकर रखा जाता है पहले कौन-सा दृश्य आएगा और उसके लिए कैमरा किस कोण से, किस गति से, कितनी देर और कैसे फोकस करेगा। इसलिए अक्सर पृष्ठ को दो भागों में विभाजित किया जाता है बायीं ओर बताया जाता

है कि कैमरा किसे दिखा रहा है, क्या दिखा रहा है। तथा दायीं ओर पात्रों द्वारा कहीं जाने वाली बात यानी संवाद होता है। संवाद के बाद ध्वनि संबंधी संकेत दिये जाते हैं। कई बार दृश्य के साथ ही ध्वनि के संकेत दे दिये जाते हैं। इनके बाद, अंत में अवधि का उल्लेख होता है। लेकिन यह पटकथा लेखक का अनुमान ही होता है। कुल मिला कर प्रोडक्शन स्क्रिप्ट का पृष्ठ इस प्रकार होता है –

'kkV l[;k	n';	laokn	/ofu iHkko	vof/k
1.	गाँव में किसान के द्वार के दृश्य में एक तरफ बैल बँधे हैं। कैमरे पर नायक होरी (दुबला-पतला, थका हुआ चेहरा) बैलों को सानी देकर हाथ धोते हुए अपनी स्त्री धनिया की ओर देखता हुआ कहता है।	गोबर को ऊख गाड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। जरा मेरी लाठी दे।	बैलों के गले में घंटियों की आवाज़	20 सैकिंड
2.	उपले पाथ कर आई धनिया (दुबली, साँवली देह, उम्र ज्यादा नहीं मगर झुर्रीदार चेहरा) के दोनों हाथों पर गोबर लगा है।	अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है?		5 सैकिंड
3.	होरी (अपने झुर्रियों भरे माथे के सिकोड़ कर बोलता है)	तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान पूजा करने लगेंगे तो घंटों बैठे बीत जाएगा।		10 सैकिंड
4.	धनिया– (आग्रह करते हुए)	इसी से तो कहती हूँ कुछ जलपान कर लो। और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा। अभी परसों तो गए थे।		10 सैकिंड
5.	होरी (धनिया को डपटता हुआ)	तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है। मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख।		5 सैकिंड
6.	समझाने की मुद्रा में	यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई।		10 सैकिंड
7.	(चतुराई का भाव चेहरे पर लाते हुए)	जब दूसरों के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।		5 सैकिंड

पर्दे पर प्रस्तुत चित्र और पात्र/पात्रों के कार्य और शब्दों में तालमेल दृश्य माध्यम के लिए लेखन की बुनियादी जरूरत है। यह सही है कि प्रोड्यूसर और अभिनेता स्वयं भी इस तालमेल को स्थापित करने के लिए भरपूर प्रयास करते हैं लेकिन पटकथा लेखक को स्वयं भी इस दायित्व के प्रति सजग रहना होता है।

vH;kl

3. साहित्यिक लेखन और रेडियो लेखन के बीच अंतर बताइए ।

....

....

....

....

4. साहित्यिक लेखन और पटकथा लेखन के बीच क्या अंतर है?

....

....

....

....

19-10 lkjka'k

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि श्रव्य-दृश्य माध्यम क्या होते हैं उनके स्वरूप का उनके लिए लेखन पर क्या प्रभाव पड़ता है। निर्माण और प्रसारण की तकनीकी जरूरतें उनमें किस तरह की विशिष्टताएँ पैदा करती है। उनकी भाषा, प्रस्तुति शैली, लेखन की जरूरतों, लेखन का तरीका आदि सभी इससे प्रभावित होते हैं। अगली इकाइयों में आप इन विशिष्टताओं को व्यावहारिक रूप में देख सकेंगे।

19-11 cks/k iz'uks@vH;klks ds mÙkj

cks/k iz'u

1. देखें, भाग 19.2
2. क) √ ख) √ ग) x
3. क) हाँ ख) हाँ ग) नहीं
   घ) नहीं ङ) हाँ
4. देखें, भाग 19.7.4
5. देखें, भाग 19.7.5

vH;kl

1. उत्तर के लिए देखें भाग 19.4
2. उत्तर के लिए देखें भाग 19.6
3. उत्तर के लिए देखें भाग 19.8.1
4. उत्तर के लिए देखें भाग 19.8.2